

विचार बिन्दु

हमारी आनंदपूर्ण बदकारियाँ ही हमारी उपीड़क चाबुक बन जाती हैं। –शेक्सपियर

जाति जनगणना से इतना क्या डरना

भारत के लिए जाति कोई नई बात नहीं।भारतीय समाज जाति विहीन समाज कभी नहीं रहा। पहले इसे वर्ण व्यवस्था के रूप में जाना गया और कालांतर में यह जन्म से जुड़ गई। जो कुम्हार, खाली, नाई के घर पैदा हुआ सो ता जिंदगी कुम्हार, खाली, नाई चाहे उसे कुम्हारी, खाली, नाईगीरी का काम उसकी रूचि का हो या न हो, आए या न आए जो ब्राह्मण के घर पैदा हुआ सो ब्राह्मण चाहे उसे शास्त्रों का कक्का भी न आए। सैद्धांतिक तौर पर यह पढ़ाया जाता

रहा है कि कर्म से वर्ण परिवर्तन सम्भव था किंतु हमारे देश में , शायद वास्तविकता में यह कभी सम्भव नहीं था।

ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न कारणों से और मुख्यतः भारतीय समाज के गहरे बिखराव-असमानता-जाती के आधार पर भेदभाव-छुआछूत आदि को उभार कर समाज को और विभाजित करने के लिए जाती जनगणना को हथियार बनाया। बहुत से शासक, समाज विविध मुद्दों पर बंट कर राज करते रहे हैं और अब भी कर रहे हैं।

ब्रिटिशर्स द्वारा प्रथम बार 1881 में जनगणना करवाई। मुख्य मुख्य जातियों के आंकड़े भी इकट्ठे करने का प्रयास किया। 1931 की जनगणना में जाति के आंकड़े शामिल थे। कुल जनसंख्या लगभग 27 करोड़ थी। इस जनसंख्या में से, काका कालेलकर आयोग द्वारा चिन्हित जातियों की जनसंख्या, अनुमानतः, 52% बनती थी। तत्समय भी, कुछ संगठनों और राजनीतिक दलों ने, दबे स्वरों में जातीय जनगणना का विरोध किया, क्योंकि उन्हें लगता था कि इससे जातिगत विभाजन बढ़ेगा और सामाजिक तनाव पैदा होगा।

जातीय जनगणना के मुद्दे पर विभिन्न संगठनों और राजनीतिक दलों के विचार और रुख समय-समय पर बदलते रहे हैं। कुछ लोगों ने जातीय जनगणना का समर्थन किया, कुछ ने विरोध किया। यह मुद्दा अभी भी बहस का विषय है। जातीय जनगणना के संबंध में कुछ प्रमुख व्यक्तियों, संगठनों के विचार इस प्रकार रहे हैं:–

महात्मा गांधी जाति प्रथा के उन्मूलन और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने के पक्षधर थे। उन्होंने जाति प्रथा को एक सामाजिक बुराई माना और इसके खिलाफ काम किया। वे जातीय जनगणना के पक्ष में थे या नहीं यह स्पष्ट नहीं। जवाहरलाल नेहरू ने भी जाति प्रथा के उन्मूलन और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने के लिए काम किया। उन्होंने जाति प्रथा को एक सामाजिक बाधा माना। इसके खिलाफ काम किया।

नेहरू जी ने 1951 की जनगणना में एन.ए.ए. के अतिरिक्त अन्य जातियों के आंकड़े इकट्ठा नहीं करने के निर्णय का समर्थन किया। शायद सरकार को आशा रही होगी कि जातिगत विभाजन धीरे-धीरे स्वतः कम होगा, अधिक समतापूर्ण समाज बन जाएगा किन्तु यह आशा फीकीभूत नहीं हुई।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने जाति प्रथा के खिलाफ लड़ाई लड़ी और दलित समुदाय के अधिकारों के लिए काम किया। उन्होंने जाति प्रथा को एक बड़ी सामाजिक बुराई माना। डॉक्टर अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रवधानों की मांग की। उन्होंने जातीय जनगणना को दलित समुदाय की स्थिति को समझने और उनके लिए नीतियां बनाने के लिए महत्वपूर्ण साधन माना। इन तीनों नेताओं के विचारों में समानता थी कि वे जाति प्रथा को एक बड़ी सामाजिक बुराई मानते थे और उसके उन्मूलन और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने के पक्षधर थे।

हिंदुत्व व हिन्दू वादी कुछ लोग व संगठन जातीय जनगणना का लगातार विरोध करते रहे हैं। उनके अनुसार जातीय जनगणना से जातिगत विभाजन बढ़ेगा, सामाजिक ताना बाना टूटेगा, तनाव पैदा होगा। सामाजिक समरसता एकता को बढ़ावा देने और जातिगत भेदभाव को कम करने के लिए जातीय जनगणना को अनावश्यक मानते थे और अब भी मानते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का रुख काफी समय दुर्लभिल व अस्पष्ट रहा किन्तु कुछ समय से कांग्रेस पार्टी ने जातीय जनगणना के मुद्दे पर अपने रुख को स्पष्ट किया है। अब, वह इसके पक्ष में है। समाजिक न्याय की वकालत करने वाली, समाजवादी, साम्यवादी विचारधाराओं से जुड़ी पार्टियां जातीय जनगणना का समर्थन करती रही हैं और अब भी करती हैं। बिहार, तेलंगाना, कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों में जातीय आंकड़े (सर्वे) इकठ्ठे करने का राज्य स्तर पर प्रयास किया गया। सँविधान के अनुसार जनगणना हो या जातीय जनगणना करने का अधिकार केंद्र सरकार का।

आजाद भारत में, पिछड़ी जातियों की दैनिकीय शैक्षणिक व सामाजिक को ध्यान में रखते हुए, उनके हितों सुझाव देने के लिए, 29 जनवरी 1953 को काका कालेलकर आयोग का गठन किया। इसकी रिपोर्ट 1955 में आई थी। इस आयोग को प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग भी कहा जाता है। प्रसिद्ध गांधीवादी काका कालेलकर इसके अध्यक्ष थे। इस आयोग ने पिछड़ी जातियों की परवचान कर उनकी सूची बनाई। इसमें कुछ जातियों को अति पिछड़ा भी माना। इन के सदस्यों ने जाति को छिटोपन से जोड़ने या नौकरियों में इन्के लिए स्थान सुनिश्चित करने के मुद्दे पर एक राय नहीं थी। प्रश्न था की क्या केवल जाति से ही पिछड़ापन तय किया जाए? जाति को बैकवाटनेस का मानदंड मानने के पक्ष में भी कुछ सदस्य थे।

आयोग की रिपोर्ट पर केंद्र सरकार का मोटा-मोटा रुख यह रहा कि पिछड़ी जातियों को चिन्हित करने का कोई वस्तुनिष्ठ मानदंड तय नहीं किया गया। इसलिए इस आयोग की रिपोर्ट कि अधिकांश सिफारिशें सरकारी फाइलों में दफन रही। आयोग ने पिछड़ी जातियों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक उन्नति के लिए कुछ सिफारिशें भी दी।

समय-समय पर, विभिन्न सरकारों यथा बिहार की कर्पूरी ठाकुर व यूपी की राम नरेश यादव सरकार ने नौकरियों में आरक्षण देने की पहल भी की। कालेलकर आयोग के प्रतिवेदन को ध्यान में रख कर ही जनता पार्टी सरकार ने मंडल आयोग का गठन किया। देर से ही सही, मंडल आयोग की सिफारिशों के क्रियावयन की भी धीमी कार्यवाही शुरू हुई। संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अनुसार राज्य को किसी भी पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए नियुक्तियों या पदों में आरक्षण का प्रावधान करने का अधिकार है, जिनका राज्य की राय में राज्य के अधीन

सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। ओबीसी के लिए नौकरियों में आरक्षण के प्रावधान को सार रूप में 1990 तक लागू नहीं किया गया।

वर्ष 2011 में केंद्र की व्डी सरकार ने सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से कमजोर जातियों (SEC) का सर्वे जरूर करवाया किन्तु आंकड़े सार्वजनिक कर पाती उस से पहले ही UPA सरकार 2014 में सत्ता से बाहर हो गई। 2014 के बाद से लगातार सत्ता में रहने वाली वर्तमान सरकार ने, विभिन्न राजनीतिक व मिथ्या सैद्धांतिक बहानों के आधार पर इन्हें सार्वजनिक नहीं किया।

1980-90 तक आरक्षण की स्थिति?

आजादी के समय छँ की आबादी मुख्य रूप से गांवों में रहती थी। भारत की स्वतंत्रता के समय गांवों में शिक्षा व्यवस्था कैसी थी? यह सर्वविदित है। 1980-85 से पहले सरकारी नौकरियों में OBC का प्रतिनिधित्व नगण्य था। जो था वह भी अधिकांशतः चपरासी, लिपिक, अघ्यापक, समकक्ष अन्य श्रेणियां तक ही सीमित था। बड़े पदों पर तो केवल गिने-चुने आर्थिक रूप से सक्षम घरों के इक्के-दुक्के लोग ही आ पाते थे। 1990 तक के आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट: सिद्ध है। OBCका दूसरा पहलू यह है कि 1985-90 से पूर्व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े ओबीसी के युवक बड़े पदों के लिए उपयुक्त योग्यता ही नहीं पा सके थे। लगभग 65-70% ऊंचे पदों वाली नौकरियों पर सर्वगं वर्ग के लोगों का ही बोलबाला था।

1990 में मंडल सिफारिशों को लागू करने की मांग जोरों से उठने लगी। नौकरियों में आरक्षण के कारण सर्वगं वर्गों के लोगों को नौकरियों में अपना वर्चस्व समाप्त होते दिखा तो कुछ राजनीतिक दलों, संगठनों ने उनके इस डर को हवा दी और छँ आरक्षण के विरुद्ध एक आंदोलन खड़ा कर दिया जो कालांतर में हिंसक भी हुआ।

अब देर से ही सही, भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने आगामी जनगणना में जातीय जनगणना करने का निर्णय लिया है। कुछ अनुदारवादी व्यक्तीकृत हिन्दू संगठनों ने भी लगभग 180 डिग्री की पलटी मारकर, जातीय जनगणना के फासले के प्रति सहमति सी प्राप्त की है यद्यपि साथ में यह भी कहा कि इसके आंकड़ों को सार्वजनिक नहीं किया जाए। ऐसापे नियों में उपयोग न हो जिनसे समाज की समरसता खत्म हो। उनका उपयोग केवल नीतिगत निर्णयों में ही हो।

इस प्रकार के 180 डिग्री घाते उलटफेर से पहले भारतीय जनता पार्टी के राजनाथ सिंह, स्व.गोपास मुंडे जैसे कुछ बड़े नेताओं को छोड़ कर अधिकतर नेता जातीय जनगणना का पानी पी-पी कर विरोध करते थे। अब ऐसे अधिकतर नेता समर्थन करने की होड़ में लाग्ए हैं। खैर पुनःनी बात है न, बंदरों की तो, मालिक लोग जैसा नाच सिखाएंगे, वैसा नाच लेंगे।

लेकिन केंद्र सरकार के इस फैसले को लेकर कुछ नए प्रश्न भी उभरे हैं। उनके उत्तर क्या होंगे, उनसे ही पता चलेगा कि इस फैसले के पीछे असली मकसद क्या है? क्या यह केवल और केवल वोटर्स को अपनी ओर लुभाने के लिए ही है ? क्या जातीय जनगणना के आंकड़ों के आधार पर, पिछड़े वर्गों के लोगों की समाजिक, शैक्षणिक व मालिहालत सुधारने के लिए कुछ ठोस निर्णय, योजनाएं बनेंगी और लागू होंगी?

जनगणना अप्रैल 2026 से प्रारम्भ होगी। उस से पहले होंगे बिहार विधान सभा के चुनाव। एक परिदृश्य की कल्पना करो कि बिहार में भाजपा को सरकार बनाने लायक बहुमत नहीं मिलता। भाजपा के वोट बैंक में उसके पारम्परिक वोट बैंक के अतिरिक्त OBC व OBC में बहुत पिछड़े वर्ग के वोट बड़ी संख्या में नही जुड़ते है तो भी, क्या जातियों की गणना कराएंगी, केंद्र सरकार?

एक अन्य बड़ा प्रश्न है, जातियों की गणना करने से सम्बंधित प्रश्न कैसा होगा, क्या-क्या सूचनाएं एकत्रित की जाएंगी? अभी तो किसी कोने से आवाज निकल रही है, सुझाव आ रहा है कि कोई अलग प्रश्न की आवश्यकता नहीं। वर्तमान प्रश्न पर्याप्त है, उसी में एक कालम जाती का भी हो जाएगा या SC/ST वाले कलम में /OBC और जोड़ दिया जाए लेकिन ऐसा किया जाएगा तो फिर इस गणना का संख्या जानने के अतिरिक्त कोई उपयोगिता नहीं रहेगी।

जाति जनगणना के साथ साथ सम्बंधित व्यक्तियों की शैक्षणिक, वित्तीय स्थितियों यथा घर, वाहन, नौकरी, व्यापार या स्वरोजगार या निर्यामित नौकरी या दिहाड़ी वर्कर, औसत मासिक रोजगार के दिन, वेतन या आमदनी, बैंक से लेनदेन, साहूकार या बैंक से कर्ज, स्वयम की संचित पूंजी, कृषि या अन्य इसी प्रकार की भूमि की जानकारीया एकत्रित करने से ही इस बड़ी एक्ससाइज का कोई उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार की जानकारीयों के अध्ययन, विश्लेषण के उपरांत ही सम्बंधित वर्गों के लिए उचित लिए हितकारी निर्णय लिए जा सकेंगे।

लोगों के मन में प्रश्न तो यह भी है कि क्या जातियों के अंदर उपजातियों की भी गणना की जाएगी और अगर ऐसा किया जाएगा तो सरकार को स्पष्ट करना चाहिए कि इसका उद्देश्य क्या होगा?? समाजों को जातियों के बजाय उपजातियों में और विभाजित कर उनकी राजनीतिक हैसियत, उपयोगिता को कम से कमतर करने के लिए?? यह भी ध्यान रखना होगा कि उपजातियां तथाकथित सर्वगं जातियों में भी हैं।

एक ओर बड़ा प्रश्न है---क्या धार्मिक समूहों यथा मुसलमान, ईसाई, सिख आदि में भी जाती-उपजाती पृष्ठो जाएगी? इस्लाम, ईसाई आदि में तो सैद्धांतिक आधार पर तो जाती प्रथा मानी नहीं जाती, तो फिर इसका उपयोग क्या होगा? क्या इससे इन धर्मों में पिछड़ों, अति पिछड़ों की पहचान कर उनके लिए सरकारी नौकरियों, शिक्षण संस्थानों में दाखिले आदि में इन आंकड़ों का उपयोग होगा? क्या यह संविधान समूत होगा या फिर इनके लिए संविधान में संसोधन होगा, जिसका वर्तमान सरकार वाला दल पुर्जोर विरोध करता है??

एक ओर बड़ा प्रश्न है कि क्या जाती जनगणना के पश्चात, इसके आंकड़ों के आधार पर, OBC वर्ग के लिये सरकारी नौकरियों की उपलब्धता में कोई परिवर्तन किया जाएगा? क्या उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाई गई आरक्षण की 50% की सीमा को बदल कर पिछड़ों की जनसँख्यानुसार नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों दाखिलों की वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन का साहस सरकार करेगी?? वैसे 50% आरक्षण सीमा सार रूप से, EWS के लिए 10% आरक्षण के बाद समाप्त सी ही तो है। हाँ, EWS आरक्षण के बाद सर्वगं वर्ग के लिए स्वतः 60% का आरक्षण हो गया क्योंकि वर्ग में शामिल नहीं है।

क्या जातियों की जनगणना से सम्बंधित प्रश्न सार्वजनिक होगा? क्या इस पर सभी राजनीतिक पार्टियों से चर्चा होगी?? और अंत में क्या सरकार निजी क्षेत्र में भी रोजगार में जाती/वर्ग आधारित आरक्षण लागू करेगी, जैसी कुछ राजनीतिक दलों, सामाजिक संगठनों की मांग है???

–अतिथि सम्पादक,

महावीर सिंह,

आई.ए.एस. (से.नि.)



अशोक कुमार

हेल्थ ईज वेल्थ का हिन्दी में मतलब ‘स्वास्थ्य ही धन है’ होता है जिसे ‘नेक तंदुरुस्ती लाख नियामत’ भी कहा जाता है जिसका मतलब है – अच्छा स्वास्थ्य हमेशा धन से ऊपर होता है। वाक्यांश हेल्थ ईज वेल्थ का गहरा अर्थ है और यह हमारे जीवन में अच्छे स्वास्थ्य के महत्व को दर्शाता है। यह हमें याद दिलाता है कि हमारे स्वास्थ्य की देखभाल करना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए, और यह कि अच्छा स्वास्थ्य जीवन में सफलता और खुशी का आधार है। सार्वजनिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए भारत में खाने में प्रयोग होने वाली कई ऐसी चीजें हैं जिन पर प्रतिबंध लगाया गया है या उपयोग को सीमित किया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख वस्तुएँ इस प्रकार हैं: कुछ सिंथेटिक रंगा. उच्च सोडियम वाले जंक फूड, कुछ कीटनाशक जैसे एलिड्न, डीडीटी, एंडोसल्फान आदि, कुछ कृत्रिम स्वीटनर, तंबाकू और निकोटीन: किसी भी खाद्य पदार्थ में इनका उपयोग प्रतिबंधित, कुछ कृत्रिम स्वीटनर, सैसाफ्रास ऑयल, ब्रॉमिनेटेड वेजिटेबल ऑयल, दवाओं पर प्रतिबंध, फिक्स्ड डोज कॉम्बिनेशन (एफडीडी) दवाएं, कुछ दर्द निवारक दवाएं, कुछ एंटी-एलर्जिक दवाएं जैसे ब्रोमेलैटिन, प्रोटोएज, कुछ सिंगल यूज्ड माइक्रो प्लास्टिक्स, प्लास्टिक्स आदि प्रतिबंधित हैं।

सिगरेट और तंबाकू से होने वाली कुल मौतों में यकृत कैंसर का विशिष्ट प्रतिशत बताना संभव नहीं है, यह स्पष्ट है कि तंबाकू का उपयोग यकृत कैंसर के लिए एक महत्वपूर्ण जोखिम कारक

है और भारत में होने वाली लाखों

तंबाकू-संबंधी मौतों में योगदान देता है।

तंबाकू नियंत्रण के प्रयास और

जागरूकता बढ़ाना इस गंभीर स्वास्थ्य

समस्या से निपटने के लिए महत्वपूर्ण है।

उपलब्ध आंकड़ों और हालिया घटनाओं

को देखते हुए, यह कहना सुरक्षित है कि

पिछले 5 वर्षों में भारत में कच्ची या

जहरीली शराब के सेवन से हजारों लोगों

की मौत हुई है। सरकारी आंकड़े केवल

2020 तक के हैं, और उसके बाद भी कई

बड़ी घटनाएं हुई हैं जिनमें बड़ी संख्या

में लोगों की जान गई है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ये

आंकड़े संभवतः कम करके आंके गए हैं,

क्योंकि कई मौतें रिपोर्ट नहीं की जाती हैं।

कच्ची शराब का अवैध उत्पादन और

बिक्री एक गंभीर समस्या बनी हुई है,

खासकर गरीब और ग्रामीण क्षेत्रों में।

शराबबंदी के अवैध व्यापार को बढ़ावा

मिल सकता है, बल्कि यह स्वास्थ्य सेवा

प्रणाली पर भी भारी दबाव डालता है और देश

की समग्र उत्पादकता को कम करता है।

सरकार हानिकारक उत्पादों से राजस्व

अर्जित करके अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य

संबंधी समस्याओं के इलाज के लिए धन

जुटा रही है, जबकि इन उत्पादों का सेवन

स्वयं ही स्वास्थ्य समस्याओं का कारण

बनता है।

कई लोग यह मानते हैं कि सरकार को

दीर्घकालिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

एक स्वस्थ आबादी अंततः अधिक

खुशहाल और अधिक उत्पादक होगी, जो

अर्थव्यवस्था के लिए भी फायदेमंद होगा।

राजस्व के अन्य स्थायी और स्वास्थ्यकर

स्रोत खोजने पर ध्यान केंद्रित किया जाना

चाहिए।

यह कहना सही होगा कि राजस्व एक

महत्वपूर्ण कारक है जो सरकार के फैसलों

को प्रभावित करता है। इन उत्पादों पर

लागू गए टैक्स सरकार के लिए आय का एक

बड़ा स्रोत होते हैं, जिसका इस्तेमाल

विभिन्न विकास कार्यों और कल्याणकारी

योजनाओं में किया जाता है। अगर सरकार

अवाचक अवाचक को इनका उत्पादन बंद

कर दे, तो उसे एक बड़ा राजस्व नुकसान का

सामना करना पड़ेगा, जिससे अन्य जरूरी

सेवाओं पर असर पड़ सकता है।

हालांकि, यह कहना कि सरकार को

सिर्फ राजस्व का ध्यान रहता है और

स्वास्थ्य की परवाह नहीं है, पूरी तरह

से सही नहीं होगा। सरकारों ने इन उत्पादों

के सेवन से होने वाले नुकसान को कम

करने के लिए कई कदम उठाए हैं:–

उच्च कर: इन उत्पादों पर भारी टैक्स

लगाया जाता है ताकि इनकी कीमत बढ़े

और लोग इनका कम सेवन करें।

स्वास्थ्य चेतावनी: इनके पैकेटों पर

स्वास्थ्य संबंधी चेतावनी छापी जाती है

ताकि उपभोक्ताओं को खतरों के बारे में

पता चले।

विज्ञापन पर प्रतिबंध: इनके विज्ञापन

पर कई तरह के प्रतिबंध लगाए गए हैं ताकि

इनका प्रचार न हो।

जागरूकता अभियान: सरकार समय-समय

पर इनके हानिकारक प्रभावों के बारे में

जागरूकता अभियान चलाती है।

इन कदमों से यह पता चलता है कि

सरकार स्वास्थ्य के प्रति भी चिंतित है,

लेकिन वह एक साथ कई पहलुओं को ध्यान

में रखकर नीतियां बनाती है। अचानक से

उत्पादन बंद करने के कुछ नकारात्मक

परिणाम भी हो सकते हैं, जैसे कि:–

अवैध व्यापार: अगर उत्पादन बंद हो जाए

तो इन उत्पादों का काला बाजार पनप

सकता है, जिससे सरकार को राजस्व का

नुकसान होगा और गुणवत्ता नियंत्रण भी

नहीं रहेगा।

1. रोजगार का नुकसान: इन उद्योगों में

काम करने वाले लाखों लोगों की रोजी-रोटी

छिन सकती है!

यू.एस. ने निषेध के दौरान शराब पर

प्रतिबंध लगाने की कोशिश की (1920-1933)।

इसके कारण: अवैध उत्पादन और

तस्करी, संगठित अपराध में वृद्धि, कर

राजस्व में कमी, सार्वजनिक स्वास्थ्य में

इतना सुधार नहीं हुआ कि प्रतिबंध के

कारण स्वास्थ्यपर नकारात्मक प्रभाव पड़े।

यह एक नया मुद्दा है जिस पर समाज में

लगातार बहस होनी चाहिए

क्योंकि यह नौकरियों के बीच एक जटिल

खींचतान है। सरकार का तर्क अक्सर यह होता है कि

उस राजस्व का उपयोग अन्य महत्वपूर्ण

सार्वजनिक सेवाओं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य

सेवा (हानिकारक उत्पादों से होने वाली

बीमारियों के इलाज सहित), बुनियादी ढांचे

और सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के

वित्तपोषण के लिए किया जाता है। उनका

यह भी कहना हो सकता है कि पूर्ण प्रतिबंध

से स्वादा मिल सकता है, जिससे सरकार को

राजस्व का नुकसान होगा और गुणवत्ता

नियंत्रण भी नहीं रहेगा।

हालांकि, एक स्वस्थ आबादी किसी भी

देश की सबसे बड़ी संपत्ति होती है। हानिकारक

उत्पादों से होने वाली बीमारियों का बोझ

न केवल व्यक्तियों और उनके परिवारों पर

पड़ता है, बल्कि यह स्वास्थ्य सेवा प्रणाली पर

भी भारी दबाव डालता है और देश की समग्र

उत्पादकता को कम करता है।

सरकार हानिकारक उत्पादों से राजस्व

अर्जित करके अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य

संबंधी समस्याओं के इलाज के लिए धन जुटा

रही है, जबकि इन उत्पादों का सेवन स्वयं ही

स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बनता है।

कई लोग यह मानते हैं कि सरकार को दीर्घकालिक

दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। एक स्वस्थ

आबादी अंततः अधिक खुशहाल और अधिक

उत्पादक होगी, जो अर्थव्यवस्था के लिए भी

फायदेमंद होगा। राजस्व के अन्य स्थायी

और स्वास्थ्यकर स्रोत खोजने पर ध्यान

केंद्रित किया जाना चाहिए।

यह कहना सही होगा कि राजस्व एक

महत्वपूर्ण कारक है जो सरकार के फैसलों